International Journal of Engineering, Management, Humanities and Social Sciences Paradigms (IJEMHS)
Volume 35, Issue 01 and Publication Date: 15th March, 2023
An Indexed, Referred and Peer Reviewed Journal
ISSN (Online): 2347-601X
www.ijemhs.com

हिन्दी दलित कथा साहित्य में स्त्री विमर्श के नये आयाम

अंजली कुमारी
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, बी0 एन0 मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार

सार

हम जानते हैं कि जातिवाद एक पितृ सत्तात्मक, दमनकारी व्यवस्था है जहाँ उच्च जाति का व्यत्ति एकमात्र प्रतिनिधि होता है। दलित लेखन में जातिवाद को स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया है। दलितों और महिलाओं को समान रूप से शत्तिशाली बनाना ही जातिवाद को मिटाने का एक मात्र तरीका है। ग्रामवी के अनुसार, निम्न वर्गों के लिए आत्म – जागरूकता विकसित करने के लिए खंडन का एक क्रम आवश्यक होगा। क्या आप नहीं कह सकते? महिलाओं को सशत्त बनाने, उनके लिए आवश्यक सहानुभूति विकसित करने, उनके श्रम के महत्व को पहचानने, उनके खिलाफ अनुचित पूर्वाग्रहों को रोकने और अंतः उन्हें एक स्वतंत्र व्यत्तित्व देने में दलित रचनात्मकता महत्वपूर्ण रही है।

मुख्य शब्दः दलित,जातिवाद,स्त्री,श्रम,लेखन

विस्तार

वर्ष 1980 तक हिंदी में दलित लेखन व्यवस्थित रूप से शुरू हो चुका था, इस प्रकार, एक आन्दोलन के रूप में यह लेखन पहले ही बीस वर्षों की अवधि को पार कर चुका है। बीस साल में एक पीढ़ी बनती है। सामाजिक आंदोलनों और साहित्य के इतिहास में, इस अवधि को एक युग माना जाता है। दलित लेखन का पहला युग सभी प्रश्नों और वैचारिक मुद्दों को कम करने, दबाने और हल करने से संबंधित था। कई अहम बिंदुओं पर उनका स्टैंड साफ था. कई अटपटे सवालों का डटकर सामना किया तो कई सवालों को टाल भी दिया, कुछ सवालों को लेकर अब भी असमंजस की स्थिति है तो कई के जवाबों ने धुधंलका बढ़ा दिया है. शुरुआत में दलित लेखन को नजर अंदाज करने की भी शिकायतें मिलीं। यह अवमानना के संदर्भ में भी फला–फूला। उन पर कलाहीनता, अशिक्षा आदि के अनेक आरोप भी लगे। इन सभी आरोप – प्रत्यारोपों को पार करते हुए दलित

लेखन ने अपनी वर्तमान स्थिति प्राप्त कर ली है। हिन्दी भाषी विचार और साहित्य जगत में अब स्थिति उलट गई है। अब इस उदय का हर तरफ से स्वागत हो रहा है। तमाम छोटी – बड़ी पत्रिकाएँ' दलित – विमर्श' निकाल रही हैं। प्रतिक्रिया वादी – पुनरुत्थान वादी संपादकों से लेकर अति – क्रांतिकारी संपादकों तक, वे इसकी खूब प्रशंसा कर रहे हैं। दलित अस्मिता की ऐतिहासिक भूमिका को लेकर हर कोई चिंतित है। अंध विरोध से अंध समर्थन की ओर यह छलांग आश्चर्य जनक है। हमारे कई सम्मानित आलोचकों ने हिंदी पट्टी को बेहद स्थिर और रूढ़िवादी कहा है। यदि इस क्षेत्र का शिक्षित वर्ग किसी निश्चित विषय पर आम सहमति पर पहुँच गया है, तो यह महत्वपूर्ण है कि भावना और वैमनस्य से बचते हुए, इस पर गौर किया जाए और इसका निष्पक्ष मूल्यांकन किया जाए। सभी विचार प्रणालियाँ अपने–अपने उद्देश्यों के लिए उपयोगी प्रतीत होती हैं। यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि दलित आंदोलन के बारे में सोचते समय इसका प्रभाव पूरे भारत पर पड़ता है।

हम कैसे निर्धारित कर सकते हैं कि नाटकीय सामाजिक परिवर्तन के लिए आहवान करने वाले आंदोलन सफल हैं या नहीं? उसकी प्रगति रिपोर्ट कैसे लिखी जानी चाहिए? प्रतिमानों को बदलने में मदद के लिए आप कार्ल मार्क्स का उपयोग कर सकते हैं। 'द होली फैमिली' में, मार्क्स और एंगेल्स ने मानव स्वतंत्रता के वास्तविक चरण को निर्धारित करने के लिए पूरियर के अभिकथन का एक निष्कर्ष के रूप में उपयोग किया। क्योंकि बर्बरता पर मानव व्यवहार की विजय सबसे स्पष्ट रूप से स्त्री और पुरुष के आपसी संबंधों में देखी जाती है, यानी कमजोर और मजबूत के बीच संबंधों में, ऐतिहासिक युग परिवर्तन हमेशा इस बात से निर्धारित होता है कि महिलाएं मुत्ति की दिशा में कितनी आगे बढ़ी हैं। नारी मुत्ति जिस हद तक आगे बढ़ी है, वह मानव प्रगति का स्वाभाविक सूचक है।[1] बाद में, अपने एक लेख में, मार्क्स ने उपरोत्त निष्कर्ष को दोहराया और कहा, 'सामाजिक उन्नति का पैमाना ठीक यही है कि यौन व्यसनी, यहाँ तक कि बदसूरत लोगों की सामाजिक स्थिति क्या है? [2]''

क्या भूमिका रही है? दलित आत्म–चेतना ने अपने लिए जो मूर्ति गढ़ी है, उसमें महिलाओं की क्या भूमिका है? हमारे पारंपरिक दिमाग में महिलाओं को मूल्यवान संसाधन माना जाता है। क्या आप इसे प्राप्त करने का इरादा रखते हैं?

महिलाओं के विषय में सभी सामाजिक आन्दोलन मौन पाए जाते हैं। दलित–विरमा ने इस समस्या की व्याख्या किस प्रकार की है? उसके औचित्य का क्या प्रभाव पड़ता है? दलित विमर्श दलित समुदाय की स्वयं की भावना को कैसे आकार देता है? उनके बारे में दलित दार्शनिक क्या विचार रखते हैं? किसी भी वास्तविक मुत्ति आंदोलन का अंतिम लक्ष्य सभी की स्वतंत्रता है। केवल एक समुदाय के लिए मुत्ति आंदोलन के लिए अन्य सभी मुत्ति आंदोलनों को सहयोगी दृष्टिकोण से देखने उचित होगा। पहचान भाषण एक मुत्तिदायक रणनीति है। स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाली अन्य उत्पीड़ित पहचानों के साथ संबंध स्थापित करके, एक उत्पीड़ित पहचान एक व्यापक परिप्रेक्ष्य विकसित करती है। ऐसा करने में, यह संघर्ष को वैध और मुत्त करने के साथ–साथ स्वतंत्रता को मानवीय बनाने की कोशिश करता है। लेकिन, पहचान की राजनीति के सामने, अपनी पहचान को अंतिम उद्देश्य के रूप में देखने अधिक आकर्षक और व्यावहारिक है। मॉ = अपनी चिंता के केंद्र में सामान्य संरचनात्मक परिवर्तन के बजाय मौजूदा सत्ता संरचना के भीतर अपने समुदाय को बढ़ती रियायतें। यह बिना कहे चला जाता है कि इस तरह की पहचान का प्रवचन सही अर्थों में मुत्तिदायक नहीं है और इसका कोई स्थायी और महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं हो सकता है। हमारे समाज में दलितों पर विमर्श से पहले महिलाओं की बात आती थी। विभिन्न कारकों के कारण, महिलाओं की पहचान राजनीतिक अर्थों में उतनी संगठित, आंदोलित और संघर्ष पूर्ण नहीं बन पाई, जितनी बाद के वर्षों में दलित पहचान बनी। इसने इस आशा को भी जन्म दिया कि ब्राह्मणवाद का पितृ सत्तात्मक रूप और उन सभी तरीकों से जिनमें महिलाओं का दमन किया जाता है, एक दिन दूर हो सकते हैं। उन्हें एक ऐसी सामाजिक संरचना द्वारा प्रतिस्थापित किया जाएगा जो अधिक समान, मानवीय और शोषण से मुत्तफ हो। दलित विचारकों का मानना है कि इतिहास ने उन्हें व्यवस्था को बदलने का जीवन में एक बार मिलने वाला अवसर प्रदान किया है। इस अस्मिता के मुख्य हस्ताक्षर में लिखा है, 'दलित मुत्ति का महान कारण हमारे सामने स्पष्ट है, और इतिहास को आकार देने का कर्तव्य हमारे कंधें पर मजबूत है। 'वह कई स्थितियों में अपनी ऐतिहासिक भूमिका पर चर्चा करते हुए भी देखे जाते हैं। साहित्य की नई लहर को संपादित करना हम दलितों पर निर्भर है।[4] ऐलिस बोल्डिंग की राय में इस तरह के ऊँचे दावों को हमेशा 'इतिहास?' क्या आप वर्चस्व की पुरानी संरचनाओं और प्रथाओं को नष्ट कर देंगे और उन्हें नए प्रकार के मानवीय संबंधों से बदल देंगे? यह सवाल सभी क्रांति कारियों के सामने है। या हम नवागंतुकों को

फरानी, शत्तिशाली व्यवस्था में मजबूर करेंगे? जब हम ब्राह्मणों के इतिहास पर विचार करते हैं तो इस विषय का महत्व और भी बढ़ जाता है। किसी कार्य को करने के लिए यदि आप पर समय का दबाव रहेगा तो आप सफल नहीं होंगे। वैकल्पिक प्रणाली का प्रस्ताव करने के लिए संपूर्ण जीवन शैली, भाषाई संस्कृतियों और विचार के नए विद्यालयों की जांच करना आवश्यक होगा। इनमें से किसी एक की उपेक्षा करके ब्राह्मणवाद से नहीं लड़ा जा सकता। मुगलत का ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण था और उसने सोचा कि हम उसे हराने के लिए अपने हथियार का इस्तेमाल कर सकते हैं। वास्तव में, यह संभव है कि इस प्रक्रिया के दौरान, यह प्रणाली आकांक्षी विपक्षी नेताओं को समायोजित करेगी और केवल मामूली समायोजन के साथ अधिकतर अपरिवर्तित रहेगी। ऐसी अस्प'टता कभी मार्क्सवाद में मौजूद थी। रोजा लक्जमबर्ग के अनुसार, केवल सर्वहारा वर्ग को वोट देने की अनुमति दी जानी चाहिए। महिलाओं को इसे प्राप्त करना चाहिए, समृद्ध महिलाओं को नहीं। 'परजीवियों के परजीवी' वे क्या हैं।[6] बाद में नारीवादियों ने मार्गदर्शन के लिए मार्क्सवाद की ओर देखा कि उन्हें महिलाओं की किस श्रेणी में आना चाहिए। लक्समबर्ग जैसे अधिकांश मार्क्सवादियों ने महिलाओं को स्वीकार करने के लिए संघर्ष किया कि वे कौन हैं। चाची मदद करने में असमर्थ थी। यदि बुर्जुआ महिलाएँ 'परजीवियों की परजीवी' हैं, तो सर्वहारा वर्ग की दासियाँ दासियों की दासियाँ हैं। चूंकि मार्क्सवाद का ध्यान वर्ग के विचार तक ही सीमित था, इसलिए दलित जाति का आधर जाति से अलग है। दलित विमर्श के लिए कल्पना भी एक विचलन है। जाति व्यवस्था दलित विमर्श के लिए संदर्भ के प्राथमिक ढांचे के रूप में कार्य करती है। राजेंद्र यादव के अनुसार महिलाओं को दलित माना जाना चाहिए क्योंकि वर्ण व्यवस्था शूद्रों और उनके साथ समान व्यवहार करती है। दलित बुद्धिजीवी इसका विरोध करते हैं कि सर्वण समाज की महिलाओं की रहन–सहन की परिस्थितियाँ दलित समुदाय से अलग हैं। समता कायम नहीं रहती। अपमान और दुर्व्यवहार दलित समुदाय के सदस्य अपनी जाति के कारण सहते हैं, उन अनुभवों से सवर्ण समाज की स्त्रियां अछूती रह जाती हैं। एक डर यह भी है कि अगर ''दो प्रतिशत सर्वण स्त्रियां दलित स्त्रियों के प्रतिनिधि'' मान ली जायेंगी तो यह 'दुर्भाग्य' ही होगा।[8] रमणिका गुप्ता 'युद्धरत आम आदमी' की सम्पादक हैं। वे दलित विषयों पर निरन्तर लिखती भी हैं। वे दलित मानी जायें या नहीं? सूरज पाल चौहान दावा करते हैं, 'सचमुच रमणिका गुप्ता ने दलित लेखकों को एक मंच दिया है', मेरे मन में कोई सवाल नहीं है, लेकिन क्योंकि कई अन्य ऊंची जाति के

लेखक भी दलितों के बारे में रचनाएँ प्रकाशित करते हैं, क्या हमें उन्हें भीर्मनिका गुप्ता की तरह दलित लेखकों के रूप में वर्गीकृत करना चाहिए?[9] भेद को पहचानने से इंकार करता है। हालाँकि, इस उदाहरण के संदर्भ को देखते हुए, यह तर्क देना संभव है कि श्री माँ दलित नहीं हैं और वास्तविक मुद्दा परिभाषा और दायरे में से एक है। हालाँकि, कुछ दलित दार्शनिक यह स्पष्ट करते हैं कि वे इस मुद्दे पर कहाँ खड़े हैं। 'मैं उन महिलाओं को दलित नहीं मानता जो दलित नहीं हैं। द्विज महिलाएं दलित नहीं हैं,

वे अपने पुरूषो की तुलना में हमारे साथ अधिक कठोर व्यवहार करते हैं, इस तथ्य के बावजूद कि हम उनसे पूरी तरह से असंबंधित हैं। द्विज लोग अपनी पत्नियों को कितना ही प्रताड़ित और प्रताड़ित करते हों, दलित हमारी महिलाओं की मदद के लिए नहीं आएंगे। हालांकि शूद्र महिलाओं को परंपरागत रूप से दलितों के बराबर देखा जाता रहा है, लेकिन अब ऐसा नहीं हो सकता। एक अर्थ में, रूढ़िवादी। दलित विमर्श में मुख्य मुद्दों में से एक काम की प्रामाणिकता है। किसी कार्य को वैध मानने के कई कारण हैं। बहरहाल, ऐसा प्रतीत होता है कि दलित विमर्श अपने स्वयं के अनुभवों को प्राथमिकता देता है और उन्हें महत्व देता है। अनुभववाद अनुभव को सर्वोच्च मूल्य देता है। इसकी प्रामाणिकता निर्धारित करती है कि यह कितना वास्तविक है, और एक प्रामाणिक रचना के लिए, लेखक को केवल अपने अनुभवों के बारे में ही लिखना चाहिए। यह संदेहास्पद बना रहेगा यदि वह दूसरों के अनुभव में प्रवेश कर सकता है, अपनी संवेदन शीलता को आत्मसात कर सकता है, और इसे स्पष्ट कर सकता है। निष्कर्ष के अनुसार, प्रतिनिधित्व का तर्क रचनात्मक क्षेत्र में लागू नहीं हो सकता। दलित साहित्य में आत्मकथात्मक रचनाओं की अधिकता इसी मान्यता का परिणाम है। एक सभ्यता में जहां एक बड़े समुदाय के जुनून, पीड़ा और इच्छाओं को समुदाय के माध्यम से ही व्यक्त किया जा सकता है,

'वास्तविक अनुभव' के महत्व पर प्रकाश डाला गया है, जो आश्चर्य जनक नहीं है। जब आत्म – अनुभव मानदंड बन जाता है, तो समस्या होती है। यह स्वीकार करना आवश्यक है कि 'अनुभव की प्रामाणिकता' साहित्य को आक्रामकता की अनिवार्यता प्रदान की गई है। इसने रचनात्मक अभिव्यक्ति के डर को दूर कर दिया है। लेखन समुदाय में अब अधिक आत्म विश्वास है। लेकिन एक निश्चित बिंदु के बाद, यह तर्क अनुभव वाद में बदल जाता है। अनुभववाद किसी भी यूटोपिया को उत्पन्न करने में असमर्थ होने के लिए जाना जाता है। इससे कोई

विजन पैदा नहीं होता। दीर्घकालीन रणनीति नहीं बना सकते। हम आशा करते हैं कि रचनाकार जल्द ही गुजर जाएगा। अनुभव के पास इतिहास से निपटने का एक अनूठा तरीका है। यह इतिहास की विविधता, बहु आयामी और असीमित व्याख्यात्मक संभावनाओं को हानि पहुँचाता है। किसी विचार धारा को चुनौती देने के लिए प्रयोग किया जाने वाला अनुभववाद चयनात्मक होता है।

इसके अलावा, यह एक निश्चित असंवेदन शीलता को जन्म देता है, जहां आपके अनुभवों को प्राथमिकता दी जाती है। सोचने वाली एकमात्र चीज आपकी पीड़ा है। आप दूसरे समुदाय को एक इकाई के रूप में दे ते हैं, और आप किसी विशेष समूह के दर्द से बेपरवाह हैं। फरवरी 2001 में 'हंस' में छपी सूरजपाल चौहान की कविता देखें। इसमें एक दलित की पीड़ा को सती प्रथा से जोड़ा गया है और साफ है कि इस प्रथा की कठोरता को बेमानी बना दिया गया है।

निष्कर्ष

हिंदी में लिखने वाले दलितों ने अपनी स्थापना के समय से जिन प्रश्नों को हल करने की कोशिश की उनमें से एक यह था कि क्या एक महिला को दलित माना जाना चाहिए या नहीं। सारा मामला गैर–दलित समुदाय की महिलाओं के इर्द–गिर्द उभरा, लेकिन दलित महिलाओं की दलित स्थिति को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया। दलित दार्शनिकों में अभी भी इस मामले में स्पष्टता का अभाव है। कभी–कभी यह कहा जाता है कि सभी महिलाएँ दलित वर्ग की होंगी, और कभी–कभी गैर–दलित समाजों की महिलाओं को अलग कर दिया जाता है क्योंकि उन्हें शोषक वर्ग का सदस्य माना जाता है। यह अस्प टता अभी भी बनी हुई है।

संदर्भ

1. 'द होली फैमिली', कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स, फारेन लैंग्युएज पब्लिशिंग हाउस, मास्को, संस्करण 1956 पृ. 258, ।
2. द्रष्टव्य, 'नारीवादी आलोचना और मार्क्सवाद', प्रीति सिन्हा का लेख, 'समकालीन जनमत' जनवरी–मार्च 2002।
3. 'सेलेक्टेड करसपोंडेंस मार्क्स एंड एंगेल्स', द मार्क्सिस्ट लेनिनिस्ट लाइब्रेरी, लंदन पुन र्मुद्रित संस्करण 1943, पृ. 255. ।
4. मार्क्स द्वारा कजेलमान को लिखी चिट्ठी का अंश, 12 दिसम्बर 1868।
5. गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक द्वारा उद्धृत, 'स्पीवाक रीडर', सम्पादन–डोना लेंड्री और गेराल्ड मैक लिएन, रटलेज, न्यूयार्क और लंदन, 1996, पृ. 209।

6. 'दलित दखल' सम्पादक– डॉ0 श्यौराज सिंह 'बचैन', डॉ0 रजतरानी 'मीनू', प्रकाशक– श्री साहित्यिक संस्थान, गाजियाबाद, उ0 प्र0 सं. 2001, सम्पादकीय से उद्धृत।
7. 'द अंडरसाइड आफ हिस्ट्री', एलिस बाउल्डिंग, सेज पब्लिकेशन, संशोधित संस्करण, वाल्यूम–1,1992, पृ.31।
8. 'फेमिनिस्ट थ्योरीः अ क्रिटीक आफ आइडिया लोजी' सम्पादन– नेनरल ओ. कियोहेन *;छंददमतस व्ण ज्ञमवींदमद्ध* आदि में संकलित कैथरीन।
9. ए. मैकमिलन का लेखः फेमिनिस्म, मार्किसज्म, एंड द स्टेटः एन एजेंडा फार थ्योरी, द हारवेस्ट प्रेस, ग्रेट ब्रिटन, प्र. सं. 1982, पृ. 7।